सोमनाथ

एक इतिहास के विविध वृत्तांत

रोमिला थापड़

महमूद गज़नवी द्वारा सोमनाथ मंदिर का विध्वंस भारतीय इतिहास लेखन में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस लेख में महमूद के अभियान का विवरण और उसके उद्देश्यों का विवेचन है। यह किस हद तक धार्मिक भावनाओं से प्रेरित था या किस हद तक राजनैतिक या आर्थिक उद्देश्यों को पूरा कर रहा था – यह चर्चा का विषय रहा है। लेकिन इस इतिहास लेखन का अपना इतिहास भी कम महत्व का नहीं है। प्रसिद्ध इतिहासकार रोमिला थापड़ ने जब इन विभिन्न ऐतिहासिक ग्रंथों को जोड़कर देखा तो एक आश्चर्यचकित करने वाली तस्वीर उभरती है। आप भी पढ़कर देखिए कि किस तरह अलग-अलग हाथ किसी घटना को रंगते हैं।

महमूद द्वारा सोमनाथ के मन्दिर पर आक्रमण और वहां की बुत का विनाश पिछली दो सदियों से इतिहास के लेखन में अत्यंत महत्व की घटना बन गई है। कुछ इतिहासकारों का मत है कि इसने पिछले एक हज़ार साल में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच वैमनस्यपूर्ण संबंधों को जन्म दिया है। फिर भी इस एक हज़ार साल के दौरान विभिन्न स्रोतों में इस घटना को और इससे जुड़ी बातों को किस ढंग से पेश किया गया है उसकी पड़ताल करने से पता चलता है कि यह परंपरागत दृष्टिकोण इस घटना को हिंदु-मुस्लिम संबंधों के मान से गलत ढंग से समझने का ही परिणाम है।

सन् 1026 में महमूद गज़नवी ने सोमनाथ के मंदिर पर आक्रमण किया और वहां की मूर्ति को तोड़ा। इसका उल्लेख कई स्रोतों में है, या फिर जहां इसका उल्लेख होने की उम्मीद की जाती है वहां इसका उल्लेख नहीं है।

अभी तक इस घटना और उसके परिणाम के बारे में हम जो बातें मानते आए हैं, कुछ उल्लेख उस पर प्रश्न चिह्न भी लगाते हैं। किसी भी घटना पर एक सदी से दूसरी सदी में व्याख्याओं का आवरण चढ़ जाता है; इससे घटना की समझ में बदलाव हो जाता है। इसलिए, एक इतिहासकार के रूप में हमें न सिर्फ इस बात की जानकारी होना चाहिए कि घटना क्या है और आज हम उसे किस रूप में देखते हैं, बल्कि यह भी जानना चाहिए कि बीच की सदियों के दौरान किस प्रकार घटना की व्याख्या की गई है। इन स्रोतों के विश्लेषण और व्याख्या की प्राथमिकताएं इतिहासकार की व्याख्याओं से ही तय होती हैं।

मैं इसके और सोमनाथ की अन्य घटनाओं के पांच नमूनों को आपके सामने रखना चाहूंगी। इसमें इस ऐतिहासिक सवाल का ध्यान रखा गया है कि महमूद के आक्रमण को किस तरह देखा गया है। ये पांच नमूने हैं– तुर्क-फारसी वृत्तांत, समकालीन जैन ग्रंथ, सोमनाथ के संस्कृत शिलालेख, ब्रिटिश हाऊस ऑफ कॉमन्स की बहस, और वह जिसे अक्सर राष्ट्रवादी व्याख्या कहा जाता है।

मैं सोमनाथ की संक्षिप्त पृष्ठभूमि से शुरू करती हूं। महाभारत में इसे प्रभास कहा गया है, और हालांकि यहां काफी बाद तक मंदिर नहीं था, यह एक तीर्थ स्थान था।[1] इस उप-महाद्वीप के कई हिस्सों के समान इस क्षेत्र में कई धार्मिक पंथ स्थापित हो गए थे – बौद्ध, जैन, शैव और मुस्लिम। इनमें से कुछ तो एक दूसरे के बाद आए और कुछ पंथ साथ-साथ अस्तित्व में रहे। प्रभास का शैव मंदिर जिसे सोमनाथ मंदिर कहा जाता था, 9वीं या 10वीं सदी का है।[2] 11वीं से 13वीं सदी तक गुजरात में चालुक्य वंश का राज्य था। काठियावाड़ में छोटे शासक शासन करते थे, जिनमें से कुछ चालुक्यों के अधीन थे।

सौराष्ट्र कृषि के हिसाब से उपजाऊ था पर उससे ज़्यादा उसकी समृद्धि व्यापार से, खासकर समुद्री व्यापार से, आई थी। सोमनाथ का बंदरगाह, जिसे वेरावल कहते थे, गुजरात के तीन बड़े बंदरगाहों में से एक था। इस काल में पश्चिम भारत का अरब प्रायद्वीप और फारस की खाड़ी के बंदरगाहों से काफी समृद्ध व्यापार था।[3] इस व्यापार की पृष्ठभूमि कई सदियों पुरानी है। अरबों के साथ व्यापार पर आधारित सम्पर्क ज़्यादा स्थाई था और इसकी तुलना में सिंध पर हुए धावों का प्रभाव कम स्थाई था। अरब व्यापारी और जहाज़ी पश्चिमी तट पर बस गए और उन्होंने स्थानीय रूप से विवाह कर लिए और आज के कई समुदायों के वे पूर्वज थे। कुछ अरब स्थानीय शासकों के यहां नौकरी करने लगे,

और राष्ट्रकूट अभिलेख तटीय इलाके में ताजिक प्रशासकों और गवर्नरों का उल्लेख करते हैं।[4] इन अरब व्यापारियों के समान होरमूज़ और गज़नी में ऐसे भारतीय व्यापारी थे, जो 11वीं सदी के बाद भी बहुत सम्पन्न बताए जाते हैं।*[5]

यह व्यापार पश्चिम एशिया से घोड़े के आयात पर केन्द्रित था और उससे कुछ कम शराब, धातु, सूती कपड़ों और मसालों पर। घोड़ों का व्यापार सबसे ज़्यादा फायदेमंद था।[6]** कुछ स्रोत बताते हैं कि इस व्यापार में मंदिरों का काफी धन लगाया जाता था।[7]

सोमनाथ-वेरावल और खंभात के बंदरगाह इस व्यापार से काफी आय पैदा करते थे और उसका काफी हिस्सा व्यापार में लगा दिया जाता था। सोमनाथ के तीर्थयात्रियों पर लगाया कर भी प्रशासन के लिए आय का एक मुख्य स्रोत था। उन दिनों यात्रियों से कर वसूलना एक आम बात थी और इसका उल्लेख मुल्तान के मंदिर के संदर्भ में भी मिलता है।[8]

हमें यह भी मालूम पड़ता है कि स्थानीय राजा – चूडास्म, आभीर, यादव और अन्य – तीर्थयात्रियों पर धावा करके उनसे वह धन लूट लिया करते थे जो वे सोमनाथ के मंदिर को दान देने के लिए ले जाते थे। इसके अलावा तटीय इलाकों में चावड़ा राजा और बवारिज नाम के कई तरह के समुद्री लुटेरे काफी लूटमार करते थे।[9] प्राचीन काल में धन पैदा करने वाले इलाकों में जिस प्रकार अशांति रहती थी, गुजरात के इस हिस्से में भी अशांति थी और चालुक्य प्रशासन को तीर्थ-यात्रियों और व्यापारियों पर होने वाले आक्रमणों को रोकने के लिए काफी मशक्कत करनी पड़ती थी।

इस सबके बावजूद व्यापार की उन्नति होती रही। इस काल में गुजरात में जैन व्यापारियों में एक सांस्कृतिक पुनरुत्थान हुआ। सम्पन्न व्यापारी परिवार राजनीतिक पदों पर थे, राज्य के वित्त का नियंत्रण करते थे, संस्कृति के संरक्षक थे, ऊंचे दर्जे के विद्वान थे, जैन संघों को उदारता से दान देते थे और भव्य मंदिरों के निर्माता थे।

यह है पृष्ठभूमि सोमनाथ मंदिर की, जिस पर महमूद ने सन् 1026 में आक्रमण किया। इसका एक तटस्थ समकालीन उल्लेख मिलता है; एक ऐसे मध्य एशियाई विद्वान से जो भारत में गहरी रुचि रखता था और जिसने वह सब विस्तार से लिखा जो उसने

* अनहिलवाड़ा के 'वास आभीर' के पास गज़नी में दस लाख की जायदाद थी – बढ़ा-चढ़ाकर लिखा हो तो भी काफी जायदाद रही होगी उसके पास।

** मार्कोपोलो भी दक्षिण भारत से संबंधित घोड़े के व्यापार का ज़िक्र करता है।

देखा और सुना – वह था अलबिरुनी। वह हमें बताता है कि महमूद के आक्रमण के करीब सौ साल पहले पत्थर का एक किला निर्मित किया गया और उसके भीतर लिंगम् स्थित था। यह किला शायद मंदिर की संपत्ति की रक्षा करने के लिए था। लिंग का सम्मान नाविक और व्यापारी खासतौर पर करते थे और इसमें आश्चर्य इसलिए नहीं होना चाहिए क्योंकि वेरावल का बंदरगाह महत्वपूर्ण था और जंजीबार से चीन तक वहां से व्यापार होता था। अलबिरूनी महमूद के कई धावों के कारण हुए आर्थिक विनाश की सामान्य ढंग से चर्चा करता है। अलबिरुनी यह भी लिखता है कि मुल्तान में रहने वाला 'दुर्लभ', जो संभवतः एक गणितज्ञ था, कई संवतों का उपयोग करके सोमनाथ पर हुए आक्रमण का वर्ष शक 947 (सन् 1025–26 के समकक्ष)[10] तय करता है। यानी स्थानीय स्रोतों को महमूद के धावे की जानकारी थी।

I

तुर्क-फारसी वर्णन

जैसी कि उम्मीद थी, तुर्क फारसी वृत्तांत इस घटना के आसपास लंबे-चौड़े मिथक बनाते हैं, जिनमें से कुछ का वर्णन मैं यहां कर रही हूं। पूर्वी इस्लामी दुनिया का एक बड़ा कवि फर्रूखी सीसतानी, जो यह दावा करता है कि वह महमूद के साथ सोमनाथ गया था, मूर्ति तोड़ने का एक आश्चर्यजनक स्पष्टीकरण देता है।[11]

इस स्पष्टीकरण को अत्यंत काल्पनिक कहकर आधुनिक इतिहासकारों द्वारा अधिकतर नकार दिया गया है पर मूर्तिभंजन का मूल्यांकन करने के लिए यह महत्वपूर्ण है। उसके अनुसार मूर्ति हिंदू देवता की नहीं थी बल्कि इस्लाम से पहले की अरब देवी की मूर्ति थी। वह कहता है कि सोमनाथ नाम (जैसा कि वह फारसी में लिखा जाता था) वास्तव में सु-मनात था, यानी मन्नत का स्थान। हमें कुरान से पता चलता है कि लाट, उज्ज़ा और मनात ये तीन इस्लाम के पहले की देवियां थीं और इनकी पूजा बहुत प्रचलित थी।[12] यह भी कहा जाता है कि पैगम्बर मुहम्मद ने इनके मंदिरों और मूर्तियों को तोड़ने का हुक्म दिया था। दो तो पहले ही नष्ट कर दिए गए पर ऐसा विश्वास है कि 'मनात' को चुपचाप गुजरात ले जाया गया और एक उपासनास्थल में स्थापित कर दिया गया। कुछ विवरणों के अनुसार 'मनात' काले पत्थर का ऐसा टुकड़ा था जो कोई मानवीय आकृति नहीं थी (aniconic)। इसलिए उसका रूप लिंगम् के समान हो सकता है। यह कहानी कई तुर्क-फारसी विवरणों पर मंडराती है। कुछ इसे गंभीरता से

लेते हैं और कुछ उसे कम महत्व देते हुए कहते हैं कि वह मूर्ति हिंदू देवता की ही थी।

सोमनाथ की मूर्ति को 'मनात' के रूप में मानना ऐतिहासिक रूप से मान्य नहीं है। इसका कोई प्रमाण नहीं है कि मंदिर में 'मनात' की मूर्ति थी। फिर भी यह कहानी घटना के बाद की स्थिति को समझने के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह महमूद के शासन को वैधता प्रदान करने के प्रयास से जुड़ी है।

'मनात' की बात से महमूद की प्रशंसा में बढ़ोतरी हुई। वह केवल हिंदू मूर्तियों का ही नहीं बल्कि 'मनात' की मूर्ति नष्ट करने वाला विध्वंसक था, जिसके लिए पैगम्बर ने हुक्म दिया था। वह इस प्रकार, इस्लाम का दोहरा चैम्पियन था।[13]

उसने दूसरे मंदिरों पर भी आक्रमण किया और मूर्तियां तोड़ी, लेकिन उसके कामों के सभी विवरणों में से सोमनाथ ज़्यादा ध्यान खींचता है। खलीफा को अपनी विजयों का विवरण भेजते समय महमूद उन्हें इस्लाम के हित में प्राप्त प्रमुख उपलब्धियां बताता है। और इसमें आश्चर्य नहीं कि इसके लिए महमूद को वज़नदार पदवियां प्रदान की गईं। यह सब इस्लामी दुनिया की राजनीति में उसकी वैधता स्थापित करता है। यह एक ऐसा आयाम है जिसकी उन लोगों ने उपेक्षा कर दी है जो उसके कामों को सिर्फ उत्तर भारत के संदर्भ में देखते हैं।

लेकिन महमूद की वैधता इस तथ्य से भी स्थापित होती है कि वह सुन्नी था और उसने इस्माइलियों और शियाओं पर आक्रमण किया, जिन्हें सुन्नी धर्मद्रोही मानते थे।[14] यह विडम्बना थी कि 11वीं सदी में इस्माइलियों ने मुल्तान के मंदिर पर आक्रमण किया और फिर उन पर महमूद ने आक्रमण किया और उनकी मस्जिद बंद कर दी गई।

धर्मद्रोही का डर इसलिए था क्योंकि रूढ़िवादी इस्लाम के विरुद्ध धर्मद्रोह लोकप्रिय था और पिछली दो सदियों से खलिफाओं से उसकी राजनीतिक शत्रुता थी। ये दोनों बातें आश्चर्यजनक नहीं लगना चाहिए क्योंकि इस्लाम इस क्षेत्र में अपेक्षाकृत नया धर्म था। कहा जाता है कि महमूद ने मुल्तान और मंसुरा में धर्म विद्रोहियों के उपासना स्थलों का विध्वंस किया। उसका दावा था कि उसने 50,000 काफिरों का कत्ल किया और उसके इस दावे के सामने यह बात भी रखी जाती है कि उसी प्रकार उसने 50,000 मुस्लिम पाखण्डियों का कत्ल किया। ये अंक काल्पनिक लगते हैं। हिन्दुओं और शियाओं तथा इस्माइलियों पर किए गए महमूद के

आक्रमण काफिरों और पाखण्डियों के विरुद्ध धार्मिक जेहाद थे। लेकिन रोचक बात यह है कि ये सब वे लोग थे और वे जगहें थीं जो अरबों और खाड़ी के साथ होने वाले अत्याधिक मुनाफे वाले घोड़ों के व्यापार से जुड़ी थी। मुल्तान के मुस्लिम विधर्मी और सोमनाथ के हिंदू व्यापारी दोनों का इस व्यापार में काफी धन लगा था। तो क्या यह संभव है कि धार्मिक कारणों से मूर्तियां तोड़ने के साथ ही महमूद सिंध और गुजरात के रास्ते से भारत को घोड़ों का आयात का व्यापार खत्म करना चाहता था? इससे घोड़ों के व्यापार पर अरबों का एकाधिकार कम हो जाता। चूंकि उत्तर-पश्चिम भारत से होकर अफगानिस्तान से घोड़ों का प्रतियोगी व्यापार चल रहा था, ऐसा संभव है कि महमूद मूर्तिभंजन को व्यापारिक लाभ प्राप्त करने की कोशिश से जोड़ रहा था।[15]

बाद के ढेर सारे विवरणों में – जो कि प्रत्येक सदी में बहुत से मिलते हैं – विरोधाभास और अतिशयोक्तियां बढ़ती जाती हैं। मूर्ति के स्वरूप पर कोई सहमति नहीं है। कुछ कहते हैं कि वह लिंगम था, दूसरे इसके विपरीत इसे मानवीय आकृति बताते हैं।[16]

इस पर भी एकमतता नहीं है कि वह स्त्री मनात है या पुरुष शिव। एक ऐसी मंशा-सी दिखती है कि वह मनात होगी। क्या इस मूर्ति को मनात मान लिया जाना मुस्लिम भावनाओं के लिए अधिक महत्वपूर्ण था?

मूर्ति का मानव आकृति रूप, नाक काटने, पेट को फाड़ने और वहां से जवाहरात निकलने की कहानियों को प्रोत्साहित करता है।[17] मंदिरों में धन होने की कल्पना ने अतिशय सम्पन्नता की कल्पना को जन्म दिया और इससे एक आधुनिक इतिहासकार ने तुर्की आक्रमणों को 'गोल्ड रश' का नाम दे दिया।[18] एक विवरण में कहा गया है कि मूर्ति में बीस मन जवाहरात थे। दूसरे में कहा गया है कि दो सौ मन भारी सोने की एक जंज़ीर लिंग को उसकी जगह पर थामे थी। एक और विवरण के अनुसार लिंगम् लोहे का था और उसके ऊपर एक चुम्बक रखा था, जिससे लिंगम् हवा में लटका रहता था – यह श्रद्धालुओं के लिए स्तंभित करने वाला दृश्य था।[19]

मंदिर की आयु पीछे, और पीछे ले जाई जाती है और मंदिर को 30 हज़ार साल पुराना तक बताया जाता है। ऐसा लगता है कि ऐसे विवरणों में सोमनाथ एक कल्पना बन जाता है और वैसा ही रूप लेने लगता है।

चौदहवीं सदी के ज़्यादा उद्देश्यपरक लेखन हैं बरनी और एसामी के वृत्तांत। दोनों कवि थे। एक दिल्ली सल्तनत से संबंधित था और दूसरा दक्खन की बहमनी सल्तनत से। दोनों महमूद को

एक आदर्श मुस्लिम नायक के रूप में पेश करते हैं, लेकिन कुछ फर्क के साथ। बरनी कहता है कि उसके लेखन का उद्देश्य शासकों को इस्लाम के प्रति उनके कर्त्तव्यों की जानकारी देना है।[20] उसके लिए धर्म और राजत्व दोनों जुड़े हैं और एक शासक यदि ईश्वर की तरफ से शासन करने का दावा करता है तो उसे राजत्व के धार्मिक आदर्शों की जानकारी होना चाहिए। सुल्तानों को शरियत के माध्यम से इस्लाम की रक्षा करना चाहिए और मुस्लिम विधर्मियों और काफिरों, दोनों को नष्ट करना चाहिए। महमूद आदर्श शासक कहा जाता है क्योंकि उसने दोनों काम किए।

फिरदौसी जिसने ईरान के शासकों पर 'शाहनामा' नामक महाकाव्य की रचना की थी, उसका अनुकरण करते हुए एसामी ने मुस्लिम शासकों के बारे में एक महाकाव्य की रचना की है। एसामी का तर्क है कि राजत्व अल्लाह से उतरा है, पहले ईरान के इस्लाम पूर्व राजाओं पर (जिनमें वह मकदूनिया के सिकंदर और ससानी शासकों को शामिल करता है) और फिर भारत के सुल्तानों पर। उसके अनुसार महमूद ने भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना की थी।[21]

रोचक बात यह है कि अरब जो महमूद के पहले उपमहाद्वीप में आर्थिक और राजनीतिक रूप से उपस्थित थे, उनका इस इतिहास में ज़िक्र नहीं है। इन विवरणों में नज़रिए का जो फर्क है वह ऐतिहासिक मूल्यांकन के लिए महत्वपूर्ण है और उसकी आगे और पड़ताल करने की ज़रूरत है।

ऐसा लगता है कि महमूद की भूमिका के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन हो रहा था। पहले उसे केवल एक मूर्तिभंजक के रूप में देखा जाता था, लेकिन अब उसे भारत में इस्लामी राज्य के संस्थापक के रूप में देखा जाने लगा। जबकि संस्थापक वाली बात ऐतिहासिक रूप से सही नहीं है। ऐसा लगता है कि यह इस्लामी इतिहास लेखन में महमूद की जो हैसियत बन गई थी उसके द्वारा भारतीय सुल्तानों को परोक्ष रूप से वैधता प्रदान करने का तरीका था। परंपरागत इस्लाम की दृष्टि से शायद भारतीय सल्तनतें संदिग्ध हैसियत रखती थीं। भारतीय सुल्तानों ने इस्लाम के पूर्व के ईरानी बादशाहों को अपना आदर्श या 'रोल मॉडल' बनाया। वे ऐसे समाज पर हुकूमत कर रहे थे जिसमें अधिकांश लोग गैर मुस्लिम थे। और तो और जिन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया था, वे भी अपने पुराने रीति रिवाज़ों को मानते रहे जो अक्सर शरिया के विरुद्ध थे। क्या इन बातों के चलते इस्लामी दुनिया में भारतीय सल्तनत की वैधता के

प्रति आश्वस्त होना मुश्किल था और इस कमज़ोरी से उभरने के लिए इस्लाम के 'चैम्पियन' महमूद को सल्तनत का संस्थापक ठहराया जा रहा था? क्या हम यह कह सकते हैं कि इन वर्णनों ने ही सोमनाथ की घटना को एक 'महिमामंडित मूर्ति' (जैसे कि कुछ लोग आजकल इस शब्द का उपयोग करते हैं) का दर्जा दे दिया था?

II

जन वर्णन

अब मैं इस काल के जैन विवरणों की बात करूंगी। जैसी कि उम्मीद है, वे इस घटना को एक भिन्न दृष्टि से देखते हैं या उसकी उपेक्षा कर देते हैं। मालवा के परमार राज दरबार का जैन कवि धनपाल जो महमूद का समकालीन था, महमूद के गुजरात अभियान का और सोमनाथ सहित कई स्थानों पर उसके धावों का संक्षिप्त वर्णन करता है।[22] पर वह काफी विस्तार से उल्लेख करता है कि जैन मंदिरों में महावीर की मूर्तियां तोड़ने में महमूद असमर्थ रहा क्योंकि 'सर्प गरुड़ को नहीं निगल सकता और न तारे सूर्य की चमक को धुंधला कर सकते हैं।' उनके अनुसार, यह शिव की तुलना में जैन मूर्तियों की बेहतर ताकत का प्रमाण है।

बारहवीं सदी की शुरुआत में, एक दूसरा जैन विवरण हमें बताता है कि मंदिरों को नष्ट कर रहे और ऋषियों तथा ब्राह्मणों को परेशान कर रहे राक्षसों, दैत्यों और असुरों से बहुत क्रुद्ध होकर चालुक्य राजा ने उनके खिलाफ अभियान किया।[23] उम्मीद थी कि इस सूची में तुरुष्क यानी तुर्क भी शामिल किए जाते, पर ऐसा न करके स्थानीय राजाओं को इस सूची में जोड़ा गया है। कहा जाता है कि राजा ने सोमनाथ की तीर्थयात्रा की, और पाया कि मंदिर पुराना हो गया है और टूट-फूट रहा है। उसने कहा कि यह बड़े शर्म की बात है कि स्थानीय राजा सोमनाथ के तीर्थयात्रियों को लूट रहे हैं और मंदिर को अच्छी हालत में नहीं रख पा रहे हैं।

ध्यान रहे, यह वही राजा है जिसने खम्भात में एक मस्जिद का निर्माण कराया था, जिसे मालवा के परमारों ने गुजरात के चालुक्यों के विरुद्ध किए गए एक अभियान में नष्ट कर दिया था। पर परमार राजा ने चालुक्य राजा के संरक्षण में बनवाए गए जैन और अन्य मंदिरों को भी लूटा था।[24] ऐसा प्रतीत होता है कि जब मंदिर शक्ति का प्रतीक दिखेगा तो वह आक्रमण का शिकार होगा चाहे वह आक्रांता के धर्म का ही क्यों न हो।

विभिन्न जैन विवरण चालुक्य राजा कुमारपाल का सोमनाथ से उसके संबंध का उल्लेख करते हैं। कहा जाता है कि वह अमर होना चाहता था।[25]

इसलिए उसके जैन मंत्री हेमचंद्र ने उसे इस बात के लिए तैयार किया कि वह सोमनाथ में लकड़ी के जीर्ण-शीर्ण मंदिर के स्थान पर पत्थर का नया मंदिर बनवाए। मंदिर के बारे में साफ लिखा गया है कि वह जीर्ण-शीर्ण हालत में है न कि ध्वस्त है। जब पुराने मंदिर के स्थान पर नया मंदिर बना दिया गया तो कुमारपाल और हेमचंद्र दोनों ने समारोह में भाग लिया। राजा को हेमचंद्र, एक जैन आचार्य की आध्यात्मिक शक्ति से प्रभावित करना चाहता था इसलिए उनके आह्वान पर कुमारपाल के सामने शिव प्रकट हुए। कुमारपाल इस चमत्कार से इतना अभिभूत हुआ कि उसने जैन धर्म अंगीकार कर लिया। यहां भी शैवधर्म के ऊपर जैनधर्म की बेहतर शक्ति को उभारने का प्रयास है। मंदिर का पुनर्निर्माण भी ज़रूरी माना गया और वह राजा की राजनीतिक वैधता के प्रतीक के रूप में आता है। यह विचित्र-सा ज़रूर दिखता है कि ये गतिविधियां सोमनाथ मंदिर पर केन्द्रित होते हुए भी महमूद का कोई ज़िक्र नहीं करतीं, जबकि महमूद का आक्रमण दो सदियों पहले ही हुआ था। इन विवरणों में सोमनाथ के बारे में चमत्कार ही केन्द्रीय बिंदु था।

महमूद के धावों को लेकर क्षोभ का संकेत एकदम दूसरे जैन स्रोतों से मिलता है और रोचक बात यह है कि ये स्रोत व्यापारी समुदाय से संबंधित हैं। एक कथा संग्रह में जवाडी नामक व्यापारी का उल्लेख है जो व्यापार में तेज़ी से धन कमाता है और फिर उस जैन मूर्ति की खोज में जाता है जो गज्जना नामक क्षेत्र में ले जाई गई थी।[26] यह स्पष्टतः गज़ना है। गज्जना का शासक यवन था। ('यवन' अब तक पश्चिम से आने वाले लोगों के लिए प्रयुक्त होने लगा था।) यवन शासक जवाडी द्वारा भेंट किए गए धन से सरलता से खुश हो गया। उसने जवाडी को मूर्ति खोजने की अनुमति दे दी और जब मूर्ति मिल गई तो उसे वापस ले जाने की अनुमति दे दी। इतना ही नहीं यवन ने मूर्ति रवाना होने के पहले उसकी पूजा की। विवरण का दूसरा भाग गुजरात में मूर्ति की स्थापना से जुड़े उतार-चढ़ावों से संबंधित है, पर वह दूसरी कहानी है।

इस कथा में समरस और सुखद कल्पना के पुट हैं। शुरू में मूर्ति का हटाया जाना अपमानजनक है और दुखी बना देता है। उसकी वापसी की आदर्श स्थिति यही है कि मूर्तिभंजकों से मूर्ति की पूजा करा ली जाए। कुछ दूसरी भी मार्मिक कथाएं हैं जिनमें गज्जना के शासक या अन्य यवन शासकों से आग्रह किया जाता है कि वे गुजरात पर आक्रमण न करें। पर ऐसी कथाएं सामान्यतः जैन आचार्यों की शक्ति के प्रदर्शन से संबंधित हैं।

इस प्रकार जैन स्रोत अपनी ही विचारधारा को रेखांकित करते हैं। जैन मंदिर बच जाते हैं और शैव मंदिर नष्ट हो जाते हैं। शिव ने अपने लिंग को त्याग दिया है जबकि महावीर अपनी मूर्तियों में विद्यमान रहकर उनकी रक्षा करते हैं। आक्रमण कलियुग में होना है क्योंकि यह पाप का युग है। मूर्तियां तोड़ी जाएंगी किंतु सम्पन्न जैन व्यापारी मंदिरों का पुनर्निर्माण करेंगे। और मूर्तियां सदैव चमत्कारिक ढंग से स्वयं को ठीक-ठाक कर लेंगी।

III

सोमनाथ के संस्कृत शिलालेख

प्रमुख विवरणों का तीसरा वर्ग स्वयं सोमनाथ से मिले संस्कृत शिलालेख हैं, जो मंदिर और उसके पड़ोस को केन्द्र बनाकर चलते हैं। जिन परिप्रेक्ष्यों की तरफ ये इशारा करते हैं वे पहले दो स्रोतों से भिन्न हैं। 12वीं सदी में चालुक्य राजा कुमार-पाल एक शिलालेख जारी करता है। वह सोमनाथ की रक्षा करने के लिए एक 'प्रांतपति' नियुक्त करता है। यह सुरक्षा स्थानीय राजाओं की लूटमार (समुद्री और स्थल मार्गों पर) से की जानी थी।[27] एक सदी बाद चालुक्य फिर से इस इलाके की रक्षा करते हैं – इस बार मालवा के राजाओं के आक्रमण से।[28] स्थानीय राजाओं द्वारा सोमनाथ के तीर्थयात्रियों को लूटे जाने की बात कई शिलालेखों में लगातार कही गई है। सन् 1169 में एक शिलालेख सोमनाथ मंदिर के मुख्य पुजारी भाव बृहस्पति की नियुक्ति का उल्लेख करता है।[29] वह कन्नौज के एक पाशुपत शैव ब्राह्मण परिवार से आने का दावा करता है और जैसा कि शिलालेख बताते हैं, उसने सोमनाथ मंदिर में ताकतवर पुजारियों की शृंखला प्रारंभ की। वह कहता है कि मंदिर को पुनः स्थापित करने के लिए स्वयं शिव ने उसे भेजा है। इसकी ज़रूरत भी थी क्योंकि यह एक पुराना ढांचा था जिसकी अधिकारियों ने बहुत उपेक्षा की थी और इसलिए भी कि कलियुग में मंदिरों की हालत खराब होती ही है। भाव बृहस्पति दावा करता है कि उसी ने लकड़ी के ढांचे के स्थान पर पत्थर का मंदिर बनाने के लिए कुमारपाल को राज़ी किया था।

एक बार फिर इन आलेखों में महमूद के धावे का कोई उल्लेख नहीं किया जाता। क्या ऐसा इसलिए था क्योंकि शिव के सशक्त लिंग का ध्वंस होना लज्जा की बात थी? या मंदिर की लूट कोई खास असाधारण घटना नहीं थी? हो सकता है कि तुर्क-फारसी वृत्तांत अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण देते रहे होंगे। फिर भी स्थानीय राजाओं द्वारा तीर्थयात्रियों को लूटने का बार-बार उल्लेख किया गया है। क्या कुमारपाल द्वारा मंदिर का पुनरुद्धार

किया जाना शिव के प्रति श्रद्धा प्रकट करने का कार्य होने के साथ ही वैधता प्राप्त करने की कोशिश भी थी? क्या एक अर्थ में यह महमूद द्वारा मंदिर लूटकर वैधता प्राप्त करने की कार्यवाही का उलटाव है।

सन् 1264 में संस्कृत और अरबी में लिखा एक लंबा कानूनी दस्तावेज़ जारी किया गया था जो होरमूज़ के एक व्यापारी द्वारा भूमि प्राप्त करने और मस्जिद बनाने से संबंधित है।[30] संस्कृत इबारत औपचारिक प्रतीक सिद्धम से शुरू होकर विश्वनाथ यानी शिव की प्रार्थना करती है। किंतु यह भी सुझाव है कि यह अल्लाह यानी संसार के स्वामी का संस्कृत अनुवाद है। हमें बताया जाता है कि होरमूज़ के 'खोजा अबू इब्राहीम' के बेटे 'खोजा नूरुद्दीन फिरोज़' ने मस्जिद बनाने के लिए सोमनाथ शहर के पास महाजनपाली में भूमि प्राप्त की। मस्जिद को 'धर्मस्थान' कहा गया है। नूरुद्दीन फिरोज़ एक जहाज़ का कप्तान था और स्पष्ट है कि वह एक सम्मानीय व्यापारी था, जैसा कि उसकी पदवी खोजा यानी ख्वाजा से साफ है। भूमि स्थानीय राजा श्री छाडा से प्राप्त की गई थी और काठियावाड़ के प्रांतपति मालदेव और चालुक्य-वघेल राजा अर्जुनदेव का भी उल्लेख है।

भूमि प्राप्त करने की इस कार्यवाही को दो स्थानीय संस्थाओं की सहमति है – 'पंचकुल' की और 'जमाथ' की। पंचकुल ताकतवर प्रशासकीय और स्थानीय समितियां थीं, जो इस काल में सुस्थापित थीं। इसमें पुजारी, अधिकारी और व्यापारी, स्थानीय गण्यमान्य जन जैसे मान्य प्रभावी लोग रहते थे। इस खास पंचकुल का प्रमुख पुरोहित शैव पाशुपत आचार्य वीरभद्र था जो संभवतः सोमनाथ के मंदिर से संबंधित था। इसके सदस्यों में से एक था व्यापारी अभय सिंह। अन्य शिलालेखों से लगता है कि वीरभद्र, उत्तराधिकार के क्रम में भाव बृहस्पति से संबंधित था। मस्जिद बनाने के लिए ज़मीन स्वीकृत करने के समझौते के साक्षियों के नामों का उल्लेख है और उन्हें *'ऊंचे लोग'* कहा गया है। वे 'ठक्कुर', 'राणक', राजा और व्यापारी थे और इनमें से कई महाजनपाली के थे। इनमें से कुछ गण्यमान्य लोग सोमनाथ और अन्य मंदिरों की सम्पदा की देखरेख करने वाले थे। महाजनपाली में बनने वाली मस्जिद के लिए दी गई ज़मीन इन्हीं सम्पदाओं का हिस्सा थी।

इस समझौते का अनुमोदन करने वाली अन्य समिति थी 'जमाथ', जिसमें जहाज़ों के मालिक, शिल्पी, नाविक और संभवतः होरमूज़ धार्मिक शिक्षक शामिल थे। तैलियों, राज-मिस्त्रियों और घोड़े के मुसलमान सईसों के नाम भी हैं। और इनका उल्लेख इनके धंधे या जाति के नाम से किया

गया है, जैसे चूर्णकार और घामचिक। क्या ये इस्लाम स्वीकार करने वाले स्थानीय लोग थे? चूंकि मस्जिद के रखरखाव के लिए आय की व्यवस्था जमाथ को सुनिश्चित करनी थी इसलिए इनकी सदस्यता का उल्लेख करना ज़रूरी था।

शिलालेख में मस्जिद को दिए गए दान की सूची है। इसमें ज़मीन के दो विशाल हिस्सों का भी उल्लेख है, जो सोमनाथ-पट्टन में स्थित पड़ोसी मंदिरों की संपत्ति का हिस्सा थे। एक 'मठ' की ज़मीन का, पड़ोस की दो दूकानों की आय का और एक तेलघाणी का भी उल्लेख है। भूमि मंदिरों के पुरोहित और मुख्य पुजारी से खरीदी गई थी और इस बिक्री का सत्यापन ऊंचे पद के लोगों ने किया था। दूकानें और तेलघाणी स्थानीय लोगों से खरीदी गईं थीं।

शिलालेख का स्वर और भावना मैत्रीपूर्ण है और स्पष्ट है कि समझौता सभी को मंजूर था। सोमनाथ मंदिर की कुछ सम्पत्ति से एक बड़ी मस्जिद का निर्माण, किसी विजेता द्वारा नहीं बल्कि एक कानूनी समझौते से एक व्यापारी द्वारा किया गया और उस पर न तो स्थानीय प्रांतपति और गण्यमान्य व्यक्तियों ने ऐतराज़ किया और न पुजारियों ने किया, बल्कि ये सब उस निर्णय में सहभागी थे। इस प्रकार मस्जिद, सोमनाथ मंदिर की भूतपूर्व सम्पत्ति और कर्मचारियों से निकट संबंध रखती है। इससे कई सवाल उठते हैं। महमूद के धावे के करीब दो सौ साल बाद किए गए इस सौदे ने क्या पुजारियों और स्थानीय 'बड़े लोगों' की याद्दाश्त को नहीं कुरेदा? क्या स्मृतियां कमज़ोर थीं, या वह घटना अपेक्षाकृत गौण थी?

क्या स्थानीय लोगों ने बहुधा ताजिक कहे जाने वाले अरबों और पश्चिमी व्यापारियों और तुर्कों या तुरुष्कों के बीच अंतर किया? और क्या अरब और पश्चिमी व्यापारी स्वीकार्य थे और बाद वाले यानी तुर्क कम स्वीकार्य थे? यह साफ है कि वे आज की तरह सभी लोगों को एक-सा मानकर उन्हें मुस्लिम नहीं कहते थे। क्या हमें विशेष सामाजिक समूहों के रवैये का और स्थितियों का परीक्षण करके घटना के प्रति हुई प्रतिक्रियाओं की छानबीन नहीं करना चाहिए? होरमूज़ घोड़े के व्यापार के लिए महत्वपूर्ण था इसलिए नूरुद्दीन का स्वागत किया गया। क्या व्यापार के नफे के सामने अन्य बातें दब गईं? क्या मंदिर और उसके प्रशासक भी घोड़ों के व्यापार में धन लगा रहे थे और मुसलमानों से यानी महमूद के धर्म वालों से व्यापार करके खूब मुनाफा कमा रहे थे?

पंद्रहवीं सदी में गुजरात से कई छोटे शिलालेख तुर्कों से हुई लड़ाइयों

का ज़िक्र करते हैं। एक अत्यंत मार्मिक संस्कृत शिलालेख स्वयं सोमनाथ का है।[31] हालांकि यह संस्कृत में है, इसका प्रारंभ इस्लामी औपचारिक आशीर्वाद 'बिस्मिल्लाह रहमान-ए-रहीम' से होता है। यह वोहरा/बोहरा फरीद के परिवार का विवरण देता है और हम जानते हैं कि बोहरा अरब मूल के थे। हमें बताया जाता है कि सोमनाथ के मंदिर पर तुरुष्कों यानी तुर्कों ने आक्रमण किया और वोहरा मुहम्मद के बेटे वोहरा फरीद ने शहर की सुरक्षा में योगदान दिया और स्थानीय शासक ब्रह्मदेव के साथ उसने तुरुष्कों से युद्ध किया। इस युद्ध में फरीद मारा गया और यह शिलालेख उसकी याद में है।

❋

जो स्रोत मैंने आपके सामने पेश किए हैं उनसे पता चलेगा कि सोमनाथ के मंदिर पर महमूद के आक्रमण के बाद घटना को अलग-अलग नज़रिए से देखा गया और ये सब उससे भिन्न हैं जो हम मान बैठे थे। इनमें से किसी एक या सभी वृत्तांतों से कोई सपाट स्पष्टीकरण नहीं उभरते। तब हम आज कैसे इस सपाट ऐतिहासिक मत पर पहुंच गए हैं कि महमूद के आक्रमण ने हिंदू चेतना को एक सदमा पहुंचाया, ऐसा सदमा जो तब से हिंदू मुस्लिम संबंधों की जड़ में रहा या के. एम. मुंशी के शब्दों में, "एक हज़ार साल तक महमूद के द्वारा किया गया सोमनाथ का विनाश एक अविस्मरणीय और राष्ट्रीय विनाश के रूप में हिंदू नस्ल की अंतरंग चेतना में सुलगता रहा है।" [32]

IV

हाऊस ऑफ कॉमन्स में चर्चा

रोचक बात यह है कि सोमनाथ पर महमूद के आक्रमण से संबंधित 'हिंदू सदमे' का संभवतः सबसे पहला उल्लेख 1843 में लंदन में हाऊस ऑफ कॉमन्स की बहस में सोमनाथ मंदिर के दरवाज़ों की चर्चा में हुआ।[33] 1842 में लॉर्ड एलनबरो ने अपनी प्रसिद्ध 'दरवाज़ों की घोषणा' जारी की थी, जिसमें उसने अफगानिस्तान में स्थित ब्रिटिश सेना को गज़नी होकर लौटने और महमूद के मकबरे से चंदन के दरवाज़े भारत लाने का आदेश दिया। ऐसा माना जाता था कि उन्हें महमूद ने सोमनाथ से लूटा था। ऐसा दावा किया गया था कि इसमें सरकार का उद्देश्य भारत से लूटी गई चीज़ को भारत लाना है। यह काम अफगानिस्तान पर ब्रिटिश नियंत्रण का प्रतीक होगा, हालांकि आंग्ल-अफगान युद्ध में अंग्रेज़ों का प्रदर्शन दयनीय था। इसे ब्रिटिश काल के पहले भारत पर अफगानिस्तान की सत्ता को उलटने की कोशिश के रूप में भी पेश किया

गया। क्या यह, जैसा कि कुछ लोगों का मत था, हिंदू भावना को प्रभावित करने की कोशिश थी?

घोषणा ने हाऊस ऑफ कॉमन्स में तूफान खड़ा कर दिया और सरकार और विरोधीपक्ष के बीच वाक्युद्ध का एक मुख्य मुद्दा बन गया। सवाल पूछा गया कि क्या एलनबरो हिंदुओं को खुश करके धार्मिक पूर्वाग्रह से खेल रहा है या वह राष्ट्रीय सहानुभूति की अपील कर रहा है? इसका बचाव उन लोगों ने किया जिनका मानना था कि दरवाज़े 'राष्ट्रीय ट्रॉफी' थे, न कि धार्मिक मूर्ति थे। इस सिलसिले में उल्लेख किया गया कि पंजाब के शासक रणजीत सिंह ने अफगानिस्तान के शासक शाहशुजाह से दरवाज़े वापस करने का आग्रह किया था। पर यह आग्रह करने वाले पत्र की जब जांच की गई तो पता चला कि रणजीत सिंह को सोमनाथ मंदिर और जगन्नाथ मंदिर में भ्रम हो गया था। यह भी तर्क दिया गया कि कोई भी इतिहासकार विभिन्न विवरणों में दरवाज़े का उल्लेख नहीं करता इसलिए दरवाज़ों की कहानी लोकपरंपरा की उपज ही हो सकती है।

जिन इतिहासकारों का उल्लेख किया गया उनमें थे गिबन, जिसने रोमन साम्राज्य पर लिखा, फिरदौसी और सादी जो फारसी कवि थे, और फरिश्ता। इनमें से फरिश्ता ही ऐसा था जिसने सत्रहवीं सदी में भारत का इतिहास लिखा था। फरिश्ता जाना माना था, क्योंकि अठारहवीं सदी में अलेक्ज़ेन्डर डो ने उसके इतिहास का अनुवाद अंग्रेज़ी में किया था। सोमनाथ के विध्वंस का फरिश्ता का विवरण पहले के वर्णनों के समान ही काल्पनिक था और उसमें साफ-साफ अतिशयोक्ति थी, जैसे, मूर्ति का विशाल आकार और महमूद के द्वारा मूर्ति का पेट फाड़ने पर निकले जवाहरातों की विशाल तादाद। और हाऊस ऑफ कॉमन्स के सदस्य भारत के इतिहास की अपनी समझ को अपनी राजनीतिक और दलीय प्रतिद्वंद्विता में हथियार की तरह इस्तेमाल कर रहे थे।

जो लोग एलनबरो के आलोचक थे वे परिणामों की कल्पना से डरे हुए थे – उनका ख्याल था कि दरवाज़े लाने का मतलब था एक देशी धर्म को समर्थन देना और वह भी वीभत्स लिंग पूजन को। उनका ख्याल था कि इसका राजनीतिक परिणाम यह होगा कि मुसलमान अत्यंत रुष्ट होंगे। जो लोग हाऊस ऑफ कॉमन्स में एलनबरो का समर्थन कर रहे थे, उन्होंने उतने ही ज़ोरदार ढंग से तर्क दिया कि वह हिंदुओं के दिमाग से पतन की भावना हटा रहा था। इससे, '.....उस देश को, जिस पर मुस्लिम आक्रांता ने आक्रमण किया था, उस दर्दनाक भावना से मुक्ति मिलेगी, जो करीब एक हज़ार साल

से लोगों के मन में कसक रही थी।' और, '.....दरवाज़ों की याद को हिंदुओं ने हिन्दुस्तान पर होने वाले एक अत्यंत विनाशकारी आक्रमण की दर्दनाक यादगार के रूप में पाल रखा है।'

क्या इस बहस ने भारत में हिंदुओं में मुस्लिम विरोधी भावना को भड़काया, जबकि प्राचीन स्रोतों से पता चलता है कि तब ऐसी कोई भावना या तो थी ही नहीं या वह सीमित और स्थानीय रही होगी। पुराने ज़माने में सदमे जैसी कोई बात न होना अभी भी एक रहस्य बना हुआ है।

गज़नी से दरवाज़े उखाड़े गए और विजयी यात्रा के रूप में वापस भारत लाए गए। पर यहां आने पर पता चला कि वे मिस्र की कारीगरी के थे और किसी भी रूप से भारत से संबंधित नहीं थे। इसलिए वे आगरे के किले के एक भण्डारकक्ष में रख दिए गए और संभव है कि अब तक उन्हें दीमक ने चाट खाया होगा।

राष्ट्रवादी वर्णन

इसके बाद हाऊस ऑफ कॉमन्स की बहस सोमनाथ के बारे में हुए लेखन में प्रतिबिम्बित होने लगती है। हिंदू-मुस्लिम संबंधों में महमूद के आक्रमणों को केन्द्र में रख दिया गया। के. एम. मुंशी ने सोमनाथ मंदिर के पुनरुद्धार की मांग का नेतृत्व किया। हिंदू इतिहास के गौरव के पुनरुद्धार के प्रति उनका सम्मोहन उनके वॉल्टर स्कॉट से प्रेरित ऐतिहासिक उपन्यासों के लेखन से शुरू हुआ। लेकिन अधिक गहरी छाप बंकिमचंद्र चटर्जी के *आनंदमठ* से आई जैसा कि 1927 में प्रकाशित उनके उपन्यास *'जय सोमनाथ'* में दिखता है। और जैसा कि एक इतिहासकार आर. सी. मजूमदार कहते हैं, 'बंकिमचंद्र की राष्ट्रीयता भारतीय न होकर हिंदू थी। यह उनके अन्य लेखन से साफ ज़ाहिर होता है, जिनमें मुसलमानों के द्वारा भारत पर अधिकार किए जाने के खिलाफ ज़ोरदार रोष जताया गया है।'[34] मुंशी, उस हिंदू आर्य गौरव का पुनरुद्धार करने के लिए उत्सुक थे जो मुसलमानों के आगमन के पहले था। उनके द्वारा मुस्लिम शासन को भारत में इतिहास के एक बड़े विभाजक के रूप में देखा गया। मुंशी की टिप्पणी बहुधा हाऊस ऑफ कॉमन्स की बहस में दिए गए वक्तव्यों को प्रतिध्वनित करती है, जैसा कि उनकी पुस्तक, 'सोमनाथः द श्राइन एटरनल' से ज़ाहिर है।

मुंशी ने सोमनाथ के मंदिर को भारत में मुस्लिम मूर्ति भंजकता का सबसे महत्वपूर्ण प्रतीक बना दिया। परंतु इसके पहले इसका महत्व अधिकतर क्षेत्रीय रहा है। मुस्लिम मूर्ति भंजकता के प्रतीक के रूप में इसका लगातार

उल्लेख अधिकतर सिर्फ तुर्क-फारसी वृत्तांतों में है। मुंशी खुद गुजरात के थे, शायद यह तथ्य सोमनाथ को उभारने के पीछे काम कर रहा था। इसके पहले, देश के दूसरे भागों में जहां भी मूर्ति भंजकता के प्रतीक थे वे स्थानीय महत्व के थे और सोमनाथ पर हुए आक्रमण के बारे में लोगों की रुचि कम ही थी।

1951 में सोमनाथ के पुनः निर्माण के बारे में मुंशी ने, जो तब केन्द्रीय सरकार के एक मंत्री थे, कहा: '.....भारत सरकार द्वारा सोमनाथ के पुनर्निर्माण की योजना से भारत की समग्र अवचेतना ज़्यादा खुश है, बनस्बित उन चीज़ों के जो हमने की हैं या कर रहे हैं।' [35] इस परियोजना से भारत सरकार के जुड़ने पर नेहरू ने कड़ा विरोध किया था और ज़ोर दिया था कि यह पुनरुद्धार किसी निजी संस्थान द्वारा किया जाना चाहिए। [36] भारत के राष्ट्रपति 'राजेन्द्र प्रसाद, प्रतिष्ठापन समारोह सम्पन्न करें, यह नेहरू को स्वीकार्य नहीं था। घटना के अध्ययन में इससे एक नया आयाम जुड़ जाता है, जिससे समाज और राज्यसत्ता की धर्मनिरपेक्ष पहचान जुड़ी है।

VI

यह मान्यता है कि, सोमनाथ पर आक्रमण जैसी घटनाओं ने दो विरोधी प्रकार की गाथाओं को जन्म दिया: 'विजय की गाथा' और उसके विरोध में 'प्रतिरोध की गाथा'। [37] यह भी कहा गया कि यह हिंदू मूर्तिपूजा से इस्लाम की टक्कर का सर्वोच्च प्रतीक है। हम यह बखूबी पूछ सकते हैं कि इस विभाजन ने कब जन्म लिया? क्या यह इस कारण नहीं उभरा कि आधुनिक इतिहासकारों ने वर्णनों के सिर्फ एक समूह को अक्षरशः पढ़ा और इनका दूसरे वर्णनों से मिलान नहीं किया? यदि वर्णनों को इतिहास लेखन के संदर्भ में रखे बिना पढ़ा जाता है तो वह पठन एक तरह से अधूरा है और इसलिए विकृत है। उदाहरण के लिए फरिश्ता का विवरण, उसके इतिहास लेखन पर विचार किए बिना हाल के समय में लगातार दोहराया गया है। न ही सोमनाथ के बारे में तुर्क-फारसी या अन्य वर्णनों को इतिहास लेखन परंपरा में स्थान दिया गया।

हम अभी भी ऐसी स्थितियों को हिंदुओं और मुस्लिमों का द्वंद्व पेश करने वाली स्थितियां मान रहे हैं। पर मैंने जिन स्रोतों की चर्चा की है उनसे यह स्पष्ट होना चाहिए कि भिन्न-भिन्न एजेन्डा वाले ऐसे कई समूह हैं जो सोमनाथ और इस घटना की छवि का निर्माण करते हैं। अरबों और तुर्कों के प्रति फारसी वृत्तांतों के रुख में फर्क है। फारसी स्रोतों में 'मनात' की प्रारंभिक फंतासी का स्थान भारत में

सुल्तानों के माध्यम से किए जा रहे इस्लामी शासन की वैधता जैसी राजनीतिक महत्व की बात ले लेती है। क्या फारसी वृत्तांत जान-बूझकर भारत में अरबों के आक्रमण का महत्व कम आंक रहे थे? और यदि ऐसा है तो क्या इसकी जड़ें इस्लाम के प्रारंभिक इतिहास के दौरान ईरानियों और अरबों के बीच हुए संघर्ष में खोजी जा सकती हैं? बोहरे और तुर्क दोनों मुसलमान थे पर उनके बीच की शत्रुता भी इस संघर्ष का हिस्सा रही होगी क्योंकि बोहरे अरब मूल के थे और वे शायद खुद को गुजरात का निवासी मानने लगे थे और वे तुर्कों को आक्रांता के रूप में देखते थे।

जैन लेखकों द्वारा लिखे इतिहास और जीवनियां, राजसी दरबार और अभिजात्य वर्ग के धर्म की चर्चा करते समय महावीर को शिव से बेहतर ढंग से पेश करते हैं और तब उनका मकसद जैनों और शैवों के बीच की प्रतिद्वंद्विता हो जाता है। लेकिन जो स्रोत भिन्न सामाजिक वर्ग, यानी जैन व्यापारियों के बारे में लिखते हैं वे, महमूद से हुए टकराव से समझौता करते दिखते हैं, शायद इसलिए कि आक्रमणों और अभियानों के दौर में व्यापारी समुदाय ने भारी नुकसान उठाया होगा।

सन् 1264 के वेरावल शिलालेख से पता चलता है कि मस्जिद के निर्माण में विभिन्न सामाजिक वर्गों का सहयोग मिला था। अत्यंत रुढ़िवादी कर्म-काण्डियों से लेकर शासकीय सत्ताधारियों ने, और सर्वोच्च सम्पत्तिशाली लोगों से लेकर कम सम्पत्ति वालों ने इसमें सहयोग किया था। रोचक बात यह है कि जमाथ के सदस्य होरमूज़ के मुसलमान थे। ऐसा भी मालूम पड़ता है कि इसमें सहयोग देने वाले स्थानीय मुसलमान मुख्यतः समाज के निचले धंधों वाले थे। इसलिए मस्जिद के रखरखाव की ज़िम्मेदारी निभाने के लिए उन्हें सोमनाथ के अभिजात्य वर्ग की सदिच्छा पाने की ज़रूरत रही होगी।

क्या यह अभिजात्यवर्ग स्वयं को सम्पत्ति पर एक नए किस्म के संरक्षक के रूप में देख रहा था? ये रिश्ते सामान्य 'हिंदू हितों' और 'मुस्लिम हितों' के द्वारा तय नहीं किए गए थे। ये कुछ अधिक खास हितों के अनुसार भिन्नता लिए थे जो नस्ल, धार्मिक सम्प्रदाय और सामाजिक हैसियत पर आधारित थे।

❋

मैंने यह दिखाने की कोशिश की है कि किस प्रकार विवरणों का हर समूह सोमनाथ मंदिर की घटना को अलग-अलग प्रकार से देख रहा था – एक मूर्तिभंजक और इस्लाम के चैम्पियन को प्रोजेक्ट करने के अवसर के रूप में; शैवधर्म के ऊपर जैनधर्म की श्रेष्ठता

बताने के लिए; कलियुग के दोष के रूप में; अन्य बातों पर ध्यान न देकर व्यापार के नफे को केन्द्र बिन्दु बनाकर; इस औपनिवेशिक विचारधारा के अनुरूप कि भारतीय समाज में हमेशा हिंदू और मुस्लिम द्वंद्व विद्यमान रहे हैं; हिंदू राष्ट्रवाद और अतीत के पुनरुद्धार के एक खास नज़रिए के रूप में जिसमें आधुनिक भारतीय समाज को धर्मनिरपेक्ष बनाने का विरोध किया गया है। किंतु ये सभी अलग-अलग या स्वतंत्र केन्द्र बिन्दु नहीं हैं। इन सभी को पास-पास रखकर देखने पर एक पैटर्न उभरता है, एक ऐसा पैटर्न, जिसमें इस बात की आवश्यकता महसूस होती है कि घटना की समझ ऐतिहासिक संदर्भों के अनुरूप हो, बहुआयामी हो और वर्णनों में जो विचारधारा का ढांचा निहित है, उसके प्रति सतर्कता हो। मेरा दावा है कि सोमनाथ मंदिर पर महमूद के आक्रमण ने एक विभाजन नहीं उत्पन्न किया, क्योंकि घटना को समझने से जुड़े कई पहलुओं में से प्रत्येक चेतन या अवचेतन रूप में अन्य कई संदर्भों से भी आच्छादित था। ये सब हमारा ध्यान छुपी और प्रकट विभिन्न प्रस्तुतियों की तरफ ले जाते हैं और इन प्रस्तुतियों में निहित वक्तव्यों की और पड़ताल करने को प्रेरित करते हैं। इन पहलुओं का मूल्यांकन हमें अतीत के प्रति ज़्यादा संवेदनशील दृष्टि प्रदान कर सकेगा।

रोमिला थापड़: देश की शीर्षस्थ इतिहासकारों में से हैं।

अनुवाद: डॉ. सुरेश मिश्र: इतिहास के पूर्व-प्राध्यापक। खण्डवा में रहते हैं।

यह लेख प्रो. थापड़ द्वारा बंबई विश्वविद्यालय में 1999 को दिए डी. डी. कोसाम्बी मेमोरियल अभिभाषण पर आधारित है, जो 'सेमीनार' पत्रिका के अंक 475 (मार्च 1999) में प्रकाशित किया गया। यह हिन्दी अनुवाद सेमीनार में प्रकाशित लेख पर आधारित है।

संदर्भ ग्रंथ

1. *Vana parvan* 13.14; 80. 78; 86. 18-19; 119.1.
2. B. K. Thapar, 1951, 'The Temple at Somanatha: History by Excavations', in K. M. Munshi, *Somnath: The Shrine Eternal, Bombay*, 105-33; M. A. Dhaky and H. P. Sastri, 1974, *The Riddle of the Temple at Somanatha*, Varanasi.
3. V. K. Jain, 1990, *Trade and Traders in Western India*, Delhi
4. *Epigraphia Indica*, XXXII, 47 ff.
5. Muhammad Ulfi, 'Jami-ul-Hikayat', in Eliot and Dowson, *The History of India as Told by its own Historians*, II, 201.
6. Abdullah Wassaf, *Tazjiyat-ul-Amsar*, in Eliot and Dowson, *The History of India as Told by its own Historians*,III 31 ff. *Prabandhachintamani*, 14; Rajashekhara, *Prabandhakoshala*, Shantiniketan, 1935, 121

7. Abdullah Wassaf, Eliot and Dowson, op. cit. I, 69; Pahoa Inscription, *Epigraphia Indica*, 1.184 ff.

8. A. Wink, 1990, *Al-Hind*, Volume I, Delhi, 173 ff; 184 ff, 187 ff.

9. Alberuni in E. C. Sachau, 1964 (reprint), *Alberuni's India*, New Delhi, I. 208.

10. Ibid., II. 9-10, 54.

11. F. Sistani in M. Nazim, 1931, *The Life and Times of Sultan Mahmud of Ghazni*, Cambridge.

12. Quran, 53. 19-20. G. Ryckmans, 1951, *Les Religions Arabes Pre-Islamique*, Louvain.

13. Nazim, op. cit.

14. A. Wink, 1990, *Al-Hind*, I, Delhi, 184-89; 217-18.

15. cf. Mohammad Habib, 1967, *Sultan Mahamud of Ghaznin*, Delhi.

16. Ibn Attar quoted Nazim, op. cit; Ibn Asir in *Gazetteer of the Bombay Presidency*, I, 523; Eliot and Dowson, II, 248 ff; 468 ff. al Kazwini, Eliot and Dowson, I, 97 ff. Abdullah Wassaf, Eliot and Dowson, III, 44 ff; IV 181.

17 Attar quoted in Nazim, op. cit, 221; Firishta in J. Briggs, 1966 (reprint), *History of the Rise of the Mohammadan Power in India*, Calcutta

18. A. Wink, *Al-Hind*, Volume 2,217.

19. Zakariya al Kazvini, *Asarul-bilad*, Eliot and Dowson, op. cit., I, 97 ff.

20. *Fatawa-yi-Jahandari* discussed in P. Hardy, 1997 (rep), *Historians of Medieval India*, Delhi, 25 ff; 107 ff

21. *Futuh-al-Salatin* discussed in Hardy, op. cit., 107-8.

22 *Satyapuriya-Mahavira-utsaha*, III.2. D. Sharma, 'Some New Light on the Route of Mahamud of Ghazni's Raid on Somanatha: Multan to Somanatha and Somanatha to Multan', in B.P. Sinha (ed.), 1969, Dr. Satkari Mookerji Felicitation Volume, Varanasi, 165-168.

23. Hemachandra, *Dvyashraya-kavya*, Indian Antiquary 1875, 4, 72 ff, 110 ff, 232 ff, 265 ff, Ibid., 1980, 9.; Klatt, 'Extracts from the Historical Records of the Jainas', *Indian Antiquary* 1882, II, 245-56; A.F.R. Hoernle, Ibid 1890, 19, 233-42.

24. P. Bhatia, *The Paramaras*, Delhi, 1970, 141.

25 Merutunga, *Prabandha-chintamani*, C.H. Tawney (trans.), 1899, Calcutta, IV, 129 ff. G. Buhler, 1936, *The life of Hemachandra-charya*, Shantiniketan.

26 *Nabhinandanoddhara*, discussed in P. Granoff, 1992, 'The Householder as [illegible] Biographies of TempleBuilders', *East and West*, 42, 2-4, 301-317.

27. Praci Inscription, *Poona Orientalist*, 1937, 1.4.39-46

28. *Epigraphia Indica* II, 437 ff.

29. Prabhaspattana Inscription, BPSI, 186

30. Somanathapattana Veraval Inscription, *Epigraphia Indica*, XXXIV, 141 ff

31. D.B.Disalkar, 'Inscriptions of Kathiawad', *New Indian Antiquary*, 1939, I, 591.

32 Somantha: *The Shrine Eternal*, 89.

33. *The United Kingdom House of Commons Debate, 9 March 1943*, on, The Somnath (Prabhas Patan) Proclamation, Junagadh 1948. 584-602, 620, 630-32, 656, 674.

34. *British Paramountcy and Indian Renaissance*, Part II. History and Culture of the Indian People, 1965, Bombay, 478.

35. Munshi, op.cit., 184.

36. S. Gopal (ed.), 1994, *Selected Works of Jawaharlal Nehru*, Vol. 16, Part I, Delhi 270 ff.

37. Aziz Ahmed, 1963, 'Epic and Counter-Epic in Medieval India', *Journal of the American Oriental Society*, 83, 470-76.

38. Davis, op.cit., 93.